IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

रागों के सौन्दर्यात्मक परिप्रेक्ष्य में राग समय सिद्धांत की प्रासंगिकता

डॉ. दीपिका लोगानी त्रिखा

सह प्राध्यापिका - संगीत वादन

पं. जे.अल.अन.गॉवर्नमेंट कॉलेज फरीदाबाद

सार संक्षेप :

शास्त्रीय संगीत अपनी विशिष्ट पहचान उसके नियमों और सिद्धांतों के कारण प्राप्त करता । है। यही नियम उसे अन्य गीत-शैलियों से भिन्न बनाते हैं, और इन्हें पालन करना अनिवार्य माना जाता है। इन्हीं सिद्धांतों में एक प्रमुख सिद्धांत है राग समय सिद्धांत। यह एक प्राचीन परंपरा है जिसमें रागों का संबंध दिन के किसी प्रहर और साल की किसी ऋतु के साथ माना गया है । कई विद्वानों का मत है कि यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत है, जो समयानुसार मनुष्य की बदलती मानसिक अवस्थाओं को ध्यान में रखकर निर्मित किया गया। जैसे प्रातःकाल मनुष्य का मन गंभीर एवं शांत होता है, किंतु समय के साथ उसमें उल्लास और चंचलता आ जाती है। इस प्रकार दिनभर मनुष्य की मनोदशा परिवर्तित होती रहती है। रागों का भी अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है, जिनमें निहित रस और भाव मनुष्य की मानसिक स्थिति से मेल खाते हैं। संभवतः इन्हीं आधारों पर रागों का वर्गीकरण किया गया होगा। इस सिद्धांत को लेकर विद्वानों में मतभेद विद्यमान हैं—कुछ इसे पूर्णतः वैज्ञानिक मानते हैं, तो कुछ इसे अर्थहीन समझते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन्हीं मत-मतान्तरों के आधार पर समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि रागों के सौंदर्यात्मक परिप्रेक्ष्य में राग समय सिद्धांत में कुछ संशोधन करने से अधिक सुखद एवं ग्राह्य परिणाम प्राप्त होते हैं, तो उन्हें स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

मुख्य शब्द : सौंदर्यात्मक ,राग समय सिद्धांत, ऋतुकालीन राग, पूर्वांग, उत्तरांग, प्रातःकालीन राग, सायंकालीन राग

शोध पत्र :

1 भूमिका

भारतीय शास्त्रीय संगीत अपनी कुछ अद्भुत विशेषताओं के कारण विश्व में अपनी पृथक पहचान रखता है। रागों का समय सिद्धान्त भी भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक निजी विशेषता है। रागों के समय निर्धारण पर आधारित सिद्धान्त को ही समय सिद्धान्त कहा जाता है। रागों के समय सिद्धान्त का क्षेत्र केवल दिन अथवा रात्रि के विभिन्न प्रहरों तक ही सीमित नहीं है, अपितु इनका सम्बन्ध वर्ष में आने वाली विभिन्नता ऋतुओं के साथ भी स्थापित किया गया है। यों तो रागों को समयानुसार गाने-बजाने की परम्परा प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही है, परन्तु राग के अस्तित्व में आने से पूर्व प्रचलित प्रणालियों में भी किसी गीत विशेष का समयानुसार गायन-वादन की परम्परा प्रचलित थी जिसका प्रमाण हमें सर्व प्रथम वैदिक कालीन संगीत से प्राप्त होता है।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि राग समय व ऋतु सिद्धांत का आदि स्रोत वैदिक काल से माना जाता है जिसका उदाहरण साम की पंचभक्तियों या खण्डों में देखने को मिलता है-

ऋतुषु पंच्चविध सामो पासीत वसंतो हिड्कारो ग्रीष्मः

प्रस्तावोवर्षा उदगीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥[12]

अर्थात ऋतुओं में पांच प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिये-वसंत हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव, वर्षा उदगीथ, शरद प्रतिहार तथा हेमंत निधन है। इस प्रकार वैदिक काल में साम उपासना को ऋतुओं के अनुसार गाने का विधान था।

2 राग समय सिद्धांत का एतिहासिक विवेचन :

रागों को समयानुसार गाने-बजाने की परम्परा का उल्लेख प्राचीन काल में सर्व प्रथम नारद कृत 'संगीत मकरंद' में मिलता है। नारद ने केवल इसे वर्गीकरण पद्धति ही नहीं माना अपितु उन्होंने राग तथा समय के सम्बन्ध के महत्व का वर्णन करते हुए अपने ग्रन्थ में इस विषय पर विस्तृत चर्चा की है।[3] नारद के पश्चातवर्ती ग्रंथकारों, जैसे 'अभिनवगुप्त'[4], 'नान्यदेव'[5] तथा 'शारंगदेव'[6] इत्यादि ने यद्यपि रागों के समय अथवा ऋतु संबंधी अवधारणा पर कोई विस्तृत चर्चा नहीं की है, किन्तु इनके ग्रंथों का सूक्ष्म अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि इन्होंने कुछ स्थानों पर रागों का उल्लेख करते हुए उनका गायन-वादन समय अवश्य बताया है। मध्यकाल में भी अनेक ग्रंथकारों ने रागों की समय योजना पर प्रकाश डालते हुए उनके सौन्दर्यात्मक पक्ष की दृष्टि से समय सिद्धान्त को राग का आवश्यक तत्व माना है। रागों के समयानुसार गायन-वादन संबंधी विचारधारा का समर्थन करने वाले मध्यकालीन ग्रंथकारों में लोचन[7], दामोदर मिश्र[8], अहोबल[9] तथा फकीरुल्लाह आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यद्यपि रागों के समय संबंधी नियम का निर्वाह केवल हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में ही किया जाता है, परन्तु मध्य काल में कर्नाटक संगीत से संबंधित कुछ ऐसे ग्रंथों का उल्लेख मिलता है जिनमें रागों के गायन-वादन समय का निर्देश दिया गया है जैसे रामामात्य कृत 'स्वरमेलकलानिधि'[10], तथा सोमनाथ कृत 'रागविबोध'[11] इत्यादि ।

आधुनिक काल में इस सिद्धान्त को प्रचलित करने का श्रेय पंडित विष्णु नारायण भातखंडे को जाता है। उन्होंने 'क्रमिक पुस्तक मालिका', 'भातखंडे संगीत शास्त्र' तथा 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम' इत्यादि ग्रंथों में रागों के समय सिद्धान्त के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उन्हें समय की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया है।

"हिंदुस्थानीयरागाणां त्रयो वर्गा सुनिश्चिता

स्वर विकृत्यधीनास्ते लक्ष्यलक्षणकोविर्दः ॥549।।[12] - श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्

वे तीन वर्ग हैं-

- कोमल रे तथा कोमल ध वाले राग
- शुद्ध रे तथा शुद्ध ध वाले राग
- कोमल ग तथा कोमल नि वाले राग।

इसके अतिरिक्त पंडित भातखंडे ने पूर्वांगवादी तथा उत्तरांगवादी रागों का भी उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है।

उपरोक्त तथ्यों का आँकलन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से आधुनिक काल तक रागों की समय योजना पर आधारित विचारधारा का समर्थन करने वाले सभी विद्वानों ने इस मत को स्वीकार किया है कि किसी भी राग को यदि उसके निर्धारित समय पर गाया-बजाया जाए तभी वह रंजक लगता है। इसका अर्थ यह हुआ कि यह मत रागों के सौन्दर्यात्मक पक्ष की ओर संकेत करता है।

3 रागों का सौन्दर्यात्मक पक्ष :

राग के सौन्दर्यात्मक पक्ष से हमारा तात्पर्य उन तत्वों से है जो किसी राग विशेष में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हैं जैसे गमक, मींड, आन्दोलन, बहलावा, आलाप तथा तान इत्यादि। अब यदि राग को एक विशिष्ट स्वर समूह के रूप में समझा जाए तो हम यह देखते हैं कि प्रत्येक राग में शुद्ध तथा विकृत स्वरों के संयोजन से कोई न कोई मनोभाव प्रकट होता है जैसे हर्ष, क्रोध, शोक, प्रणय तथा उन्माद इत्यादि।[13]

जैसा कि सर्व विदित है कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक होने वाले समय परिवर्तन का एक मनुष्य की मनःस्थिति पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए विद्वानों द्वारा रागों का सूक्ष्म अवलोकन किया गया तथा उनका समय नियोजन किया गया। इस तथ्य से यह तो प्रमाणित अवश्य हो जाता है कि राग के समय सिद्धान्त का सम्बन्ध न केवल सौन्दर्यात्मक पक्ष के साथ है, अपितु इसका मनोवैज्ञानिक आधार भी है। इसके अतिरिक्त राग की प्रकृति के अनुकूल स्वरों का लगाव तथा उस राग में प्रयोग किये जाने वाले विविध अलंकरण इत्यादि के आधार पर भी रागों का समय निर्धारित किया जाता है। उदाहरण के रूप में यदि राग भैरव को लिया जाए, तो यह एक आलाप प्रधान राग है जिसकी गंभीर तथा शांत प्रकृति के अनुरूप इसमें आन्दोलन, मींड तथा बहलावा इत्यादि अलंकरणों का प्रयोग अधिक किया जाता है जो इस राग को प्रातःकाल के अनुकूल बनाता है। अब यदि इसमें खटका अथवा मुरकी इत्यादि का प्रयोग किया जाए, तो ये इस राग की सौन्दर्य अभिव्यक्ति के बाधक सिद्ध होंगे।

राग के स्वर लगाव में अंतर भी उनके समय निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि हम प्रातःकालीन तथा सायंकालीन संधिप्रकाश रागों का सूक्ष्म अवलोकन करें तो यह देखते हैं कि यद्यपि भैरव तथा पूर्वी मेल के रागों में कोमल ऋषभ तथा कोमल धैवत स्वरों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु इन दोनों स्वरों के लगाव

में अंतर होने के कारण राग भैरव का समय प्रातःकाल निर्धारित किया गया है तथा पूर्वी का गायन-वादन समय सायंकाल माना गया है। इसी प्रकार ऋतु कालीन रागों की भी यह विशेषता है कि इस वर्ग में भी कुछ ऐसे राग सुनने को मिलते हैं जिनका स्वर विधान एक सा होते हुए भी इनकी प्रकृति तथा स्वर लगाव में अंतर होने के कारण इन्हें अलग-अलग ऋतुओं के अनुकूल माना गया है। जैसे राग मियाँ मल्हार तथा बहार में कोमल गंधार के साथ निषाद स्वर के दोनों प्रकार प्रयोग किये जाते हैं, परन्तु राग मियाँ मल्हार में उसकी गंभीर प्रकृति के अनुरूप स्वरों का प्रयोग गमक तथा मींड के साथ किया जाता है जिसे सुनते ही हमारे मन की कल्पना में वर्षा ऋतु का आरम्भिक दृश्य चित्रित होने लगता है। इसी प्रकार राग बहार में इन्हीं स्वरों का प्रयोग इनकी चंचल प्रकृति के अनुरूप किया जाता है जो इसे वसंत ऋतु के अनुकूल बनाता है।

इसके अतिरिक्त राग के प्रस्तुतिकरण का एक मुख्य आधार है बंदिश, बंदिश राग के भाव को उजागर करने का एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है और यदि बंदिश के पदों का चयन किसी राग विशेष के गायन समय के अनुकूल हो तो उस राग की सुन्दरता में चार चाँद लग जाते हैं। उदाहरण स्वरूप यदि हम राग भैरव पर आधारित साहित्यिक रचनाओं पर प्रकाश डालें तो इनकी विषय वस्तु में प्रातःकाल के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन अथवा भक्ति रस से परिपूर्ण बंदिशें पाई जाती हैं जैसे 'जागिये रघुनाथ कुंवर पंछी बन बोले', अथवा 'बिना हरी कौन खबर मोरी लेत' इत्यादि। बंदिशों के शब्दों का चयन किसी राग से उत्पन्न होने वाले भावों के अनुकूल होना आवश्यक है। जैसे यदि 'जागो मोहन प्यारे', इस पद की रचना रात्रि के समय गाए जाने वाले राग यमन अथवा केदार में की जाए, अथवा 'शाम भई घनश्याम न आए' इस बंदिश की रचना के लिए भोर के रागों को लिया जाए तो एक कलाकार अथवा श्रोता की दृष्टि से इसकी कल्पना करना भी हमारे मन को स्वीकार्य नहीं होगा।[14] परन्तु यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि बंदिशों की विषय वस्तु केवल एक विशिष्ट समय पर ही आश्रित हो यह नियम दिन अथवा रात्रि इत्यादि के लिए अनिवार्य नहीं है और ऐसा करना उचित भी नहीं है अन्यथा इनका विषय क्षेत्र एक सीमित दायरे में ही सिमट कर रह जाएगा।

किन्तु यदि ऋतु कालीन रागों के सन्दर्भ में बात करें तो इन रागों में पाई जाने वाली रचनाओं में अधिकांशतः किसी विशिष्ट ऋतु से संबंधित विषय ही समाहित रहते हैं। उदाहरण स्वरूप वर्षा ऋतु में गाए जाने वाले रागों, जैसे मियाँ की मल्हार, मेघ मल्हार तथा गौड़ मल्हार इत्यादि पर आधारित बंदिशों में प्रायः गरजते हुए मेघ, दादुर,पपीहा इत्यादि का मधुर गान अथवा अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई नायिका इत्यादि का वर्णन मिलता है जैसे 'बिजुरी चमके बरसे रे, झुक आई बदरिया सावन की' अथवा 'गरजत बरसत भीजत आईलो' इत्यादि।

इसी प्रकार वसंत ऋतु से संबंधित रागों जैसे बसंत, बहार तथा हिंडोल आदि पर आधारित रचनाओं की विषय वस्तु में प्रायः वातावरण में चारों ओर छाई हुई हरियाली तथा वृक्ष पर कोयल का मधुर गान इत्यादि विषय समाहित रहते हैं। जैसे , फगवा ब्रिज देखन को चली री','रंग रंग गुलबन में ऋतुवसंत छाई' इत्यादि।

रागों के सौन्दर्यात्मक पक्ष की दृष्टि से उनकी समय संबंधी अवधारणा का विवेचन करने के पश्चात अब एक प्रश्न विचार करने योग्य है।क्या रागों को केवल उनके निर्धारित समय पर गाने से ही उनकी रंजकता सिद्ध होती है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए हमें दो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के आधार पर इस तथ्य का अवलोकन करना होगा। पहली परिस्थिति यह है कि जैसा कि हम जानते हैं कि आज कल रेडियो अथवा टेलिविज़न इत्यादि से संबंधित कार्यक्रमों में दिन तथा रात्रि के राग प्रायः एक ही बैठक में रिकार्ड कर लिए जाते हैं। इस प्रकार की तकनीकी परिस्थिति में एक कलाकार के लिए मालकौंस अथवा कान्हड़ा इत्यादि रात्रि

कालीन रागों का प्रस्तुतीकरण करना किसी चुनौती से कम नहीं है। परन्तु एक कलाकार की प्रतिभा, अद्भुत कल्पना शक्ति तथा सृजनात्मक क्षमता आदि विशेषताओं के कारण वह इन रागों की सुन्दरता को बनाए रखते हुए किसी भी समय प्रस्तुत कर सकता है।

इसके अतिरिक्त आज यदि हम देखें तो एक गायक अथवा वादक की कठिन साधना तथा लम्बे अनुभव के फलस्वरूप हमें कुछ सर्वकालिक राग भी सुनने को मिलते हैं, उदाहरण के रूप में यदि राग भैरवी, पीलू, मिश्र काफी इत्यादि रागों को लिया जाए, - तो इन पर आधारित उपशास्त्रीय संगीत की रचनाएं जैसे ठुमरी, दादरा कजरी अथवा चैती आदि भी समय सुनने पर हृदय स्पर्शी लगती हैं। दूसरी परिस्थिति यह है कि यदि किसी कार्यक्रम के अंतर्गत किसी समय विशेष के अनुकूल राग का प्रस्तुतीकरण किया जा रहा हो परन्तु राग के नाम की घोषणा होने पर भी श्रोताओं पर उसका उचित प्रभाव न पडे तो इसे समय सिद्धान्त की कमी नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के तौर पर यदि दो रागों मेघ मल्हार तथा मधुमाद सारंग को लिया जाए, तो इन दोनों रागों का स्वर विधान एक सा है किन्तु दोनों की प्रकृति तथा स्वरों के लगाव में अंतर है। अब यह एक कलाकार की कुशाग्र बुद्धि, उसकी तालीम तथा अभ्यास पर निर्भर करता है कि वह इन दोनों रागों के स्वरूप को समझते हुए इनके साथ कैसा व्यवहार करता है। यदि राग मेघ मल्हार का गायन-वादन करते हुए इसमें मल्हार अंग की स्वर संगति का प्रयोग न किया जाए, अथवा इसमें स्वरों का प्रयोग मींड अथवा गमक के साथ न किया जाए तो वर्षा ऋतु में गाया जाने पर भी यह रंजक अथवा मधुर नहीं लगेगा।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समय सिद्धांत एक ऐसा सिद्धांत रहा है जिसका विवरण हमें प्रचीन काल से प्राप्त तो होता है परंतु इसका वास्तविक औचित्य क्या है? यह पूर्णता स्पष्ट नहीं होता। जैसा कि उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि कुछ विद्वानों ने इस सिद्धांत में शिथिलता भी स्वीकारी है तो कुछ ने तो अपनी इच्छा से गाने पर आनंद प्राप्ति की भी बात कही है। इस प्रकार इस सिद्धांत के पालन के पीछे कोई सुदृढ़ प्रमाण हमें प्राप्त नहीं होते। इसी क्रम में यदि वर्तमान संदर्भ में इस सिद्धांत के कठोरता से निर्वहन की बात की जाये तो पूर्णतः अर्थहीन ही प्रतीत होती है। तर्कसंगत रूप से सोचा जाये तो समय सिद्धांत राग विशेष को प्रस्तुतिकरण की व्यवस्था प्रदान करता है। रागों के सौन्दर्यात्मक पक्ष के अनुसार इन सभी बिंदुओं का अवलोकन करने पर ऐसा महसूस होता है कि राग समय सिद्धांत में यदि कुछ उदारता वरती जाये तो भारतीय शास्त्रीय संगीत को लाभ अधिक होगा क्यूंकी रंजकता की दृष्टि से यह राग का एक आवश्यक तत्व है ।जिसका प्रयोग कलाकार तथा श्रोताओं द्वारा परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी बुद्धि तथा विवेक के अनुसार किया जाता है।

अतः वर्तमान समय में राग समय सिद्धान्त कुछ शिथिलता मांगता हुआ सा प्रतीत होता है। परिवर्तन के इस दौर में समय सिद्धांत बंधन से उन्मुक्त होने की ओर इशारा कर रहा है। जिस पर गम्भीरतापूर्वक चिंतन और विचार कर खुले दिल दिमाग से सोचने की परम आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1] छांदोग्य उपनिषद, पंचम खण्ड, उद्धृत शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे, भारतीय संगीत का इतिहास, प्रथम संस्करण वि. संवत 2026, चौखम्बा विधाभवन, वारणसी, पृ. 108

[2] बिष्ट, कृष्णा , रागों का समय सिद्धांत: एक सिंहावलोकन, वागेश्वरी पत्रिका, संगीत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, vol . x जुलाई-दिसम्बर 1999, पृ.12

[3] नारद, संगीत मकरंद, संगीत कार्यालय हाथरस 1978, अध्याय 3, पृ॰ 15

[4] Lath,Mukund, An Enquiry into the Raga-time association, Jijnasa, Journal of the History of Ideas and culture, University of Rajasthan, Jaipur, vol.III, June 1984, pg.52

[5] Ibid,pg. 53

[6] शारंगदेव ,संगीत रत्नाकर, अयार लायब्रेरी सीरीज, 1951, हिन्दी अनुवाद सुभद्रा चौधरी, पृ. 206

[7] लोचन, राग तरंगिनी, संस्कृत पुस्तकालय, दरभंगा 1991, अध्याय 5, पृ. 13

[8] दामोदर, संगीत दर्पण, संगीत कार्यालय हाथरस, 1962, अध्याय 2, पृ. 76

[9] अहोबल, संगीत पारिजात, कालिंद प्रकाशन, संगीत कार्यालय हाथरस, 1971, अध्याय 2, पृ. 108

[10] रामामात्य, स्वरमेलकलानिधि, संगीत कार्यालय हाथरस 1960, अध्याय 5, पृ. 35

[11] बिष्ट, कृष्णा , रागों का समय सिद्धांत: एक सिंहावलोकन, वागेश्वरी पत्रिका, संगीत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, vol . x जुलाई-दिसम्बर 1999,पृ.14

[12] भातखंडे, विष्णु नारायण, श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम, मध्यप्रदेश, हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 1984, पृ. 184-185

[13] महाजन ,अनुपम, भारतीय संगीत एवं सौंदर्य शास्त्र, , हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ 1993, अध्याय 5, पृ. 135

[14] गर्ग, लक्ष्मी नारायण, संगीत निबंध संग्रह, संगीत कार्यालय हाथरस, 2003, पृ. 411